आत्माका स्व-परप्रकाश (२)

आचार्य हेमचन्द्रने सूत्रमें आत्माको स्वाभासी और पराभासी कहा है। यद्यपि इन दो विशेषणोंको लक्षित करके हमने संक्षेपमें लिखा है (पृ० ११३) फिर भी इस विषयमें अन्य दृष्टिसे लिखना आवश्यक समझ कर यह थोड़ा-सा विचार लिखा जाता है।

'स्वाभासी' पदके 'स्व' का आभासनशील और 'स्व' के द्वारा आभासनशील ऐसे दो अर्थ फलित होते हैं पर वस्तुतः इन दोनों अर्थोंमें कोई तात्त्विक भेद नहीं। दोनों अर्थोंका मतलब स्वप्रकाशसे है और स्वप्रकाशका तात्पर्य भी स्वप्रत्यक्ष ही है। परन्तु 'पराभासी' पदसे फलित होनेवाले दो अर्थोंकी मर्यादा एक नहीं। पर का आभासनशील यह एक अर्थ जिसे वृत्तिमें आचार्यने स्वयं ही बतलाया है और पर के द्वारा आभासनशील यह दूसरा अर्थ। इन दोनों अर्थोंके भावमें अन्तर है। पहिले अर्थसे आत्माका परप्रकाशन स्वभाव सूचित किया जाता है जब कि दूसरे अर्थसे स्वयं आत्माका अन्यके द्वारा प्रकाशित होनेका स्वभाव सूचित होता है। यह तो समझ ही लेना चाहिए कि उक्त दो अर्थोंमेंसे दूसरा अर्थात् पर के द्वारा आभासित होना इस अर्थका तात्पर्य पर के द्वारा प्रत्यक्ष होना इस अर्थमें है। पहिले अर्थका तात्पर्य तो पर को प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी रूपसे भासित करना यह है। जो दर्शन आत्मभिन्न तत्त्वको भी मानते हैं वे सभी आत्माक परका अवभासक मानते ही हैं। और जैसे प्रत्यक्ष या परोक्षरूपसे पर का अवभासक आत्मा अवश्य होता है वैसे ही वह किसी-न-किसी रूपसे स्वका भी अवभासक होता ही है अतएव यहाँ जो दार्शनिकोंका मतभेद दिखाया जाता है वह स्वप्रत्यक्ष और परप्रत्यक्ष अर्थको लेकर ही समझना चाहिए। स्वप्रत्यक्षवादी वे ही हो सकते हैं जो ज्ञानका स्वप्रत्यक्ष मानते हैं और साथ ही ज्ञान-आत्माका अभेद या कथञ्चिदभेद मानते हैं। शंकर, रामानुज आदि वेदान्त, सांख्य, योग, विज्ञानवादी बौद्ध और जैन इनके मतसे आत्मा स्वप्रत्यक्ष है—चाहे वह आत्मा किसीके मतसे शुद्ध व नित्य चैतन्यरूप हो, किसीके मतसे जन्य ज्ञानरूप ही हो या किसीके मतसे चैतन्य-ज्ञानोभयरूप हो—क्योंकि वे सभी आत्मा और ज्ञानका अभेद मानते हैं तथा ज्ञानमात्रको स्वप्रत्यक्ष ही मानते हैं। कुमारिल ही एक ऐसे हैं जो ज्ञानको परोक्ष मानकर भी आत्माको वेदान्तकी तरह स्व-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाश ही कहते हैं। इसका तात्पर्य यही जान पड़ता है कि कुमारिलने आत्माका स्वरूप श्रुतिसिद्ध ही माना है और श्रुतिओंमें स्वप्रकाशत्व स्पष्ट है अतएव ज्ञानका परोक्षत्व मानकर भी आत्माको स्वप्रत्यक्ष विना माने उनकी दूसरी गति ही नहीं[1]।

परप्रत्यक्षवादी वे ही हो सकते हैं जो ज्ञानको आत्मासे भिन्न, पर उसका गुण मानते हैं—चाहे वह ज्ञान किसीके मतसे स्वप्रकाश हो जैसा प्रभाकरके मतसे, चाहे किसीके मतसे परप्रकाश हो जैसा नैयायिकादिके मतसे।

प्रभाकरके मतानुसार प्रत्यक्ष, अनुमिति आदि कोई भी संवित् हो पर उसमें आत्मा प्रत्यक्षरूपसे अवश्य भासित होता है। न्याय-वैशेषिक दर्शनमें मतभेद है। उसके अनुगामी प्राचीन हों या अर्वाचीन—सभी एक मतसे योगीकी अपेक्षा आत्माको परप्रत्यक्ष ही मानते हैं क्योंकि सबके मतानुसार योगज प्रत्यक्षके द्वारा आत्माका साक्षात्कार होता है[2]। पर अस्मदादि अर्वाग्दर्शीकी अपेक्षा उनमें मतभेद है। प्राचीन नैयायिक और वैशेषिक विद्वान् अर्वाग्दर्शीके आत्माको प्रत्यक्ष न मानकर अनुमेय मानते हैं[3], जब कि पीछेके न्याय-वैशेषिक विद्वान् अर्वाग्दर्शी आत्माको भी उसके मानस-प्रत्यक्षका विषय मानकर परप्रत्यक्ष बतलाते हैं[4]।

ज्ञानको आत्मासे भिन्न माननेवाले सभीके मतसे यह बात फलित होती है कि मुक्तावस्थामें योगजन्य या और किसी प्रकारका ज्ञान न रहनेके कारण आत्मा न तो साक्षात्कर्ता है और न साक्षात्कारका विषय। इस विषयमें दार्शनिक कल्पनाओंका राज्य अनेकधा विस्तृत है पर वह यहाँ प्रस्तुत नहीं।

ई० १९३९] [प्रमाण मीमांसा

---

१. 'आत्मनैव प्रकाश्योऽयमात्मा ज्योतिरितीरितम' —श्लोकवा० आत्मवाद श्लो० १४२।

२. 'युञ्जानस्य योगसमाधिजमात्ममनसोः संयोगविशेषादात्मा प्रत्यक्ष इति।' —न्यायभा० १. १. ३। 'आत्मन्यात्ममनसोः संयोगविशेषाद् आत्मप्रत्यक्षम्—वैशे० ९. १. ११।

३. 'आत्मा तावत्प्रत्यक्षतो गृह्यते' —न्यायभा० १. १. १०। 'तत्रात्मा मनश्चाप्रत्यक्षे' —वैशे० ८. १. २।

४. 'तदेवमहंप्रत्ययविषयत्वादात्मा तावत् प्रत्यक्षः' —न्यायवा० पृ० ३४२। 'अहंकारस्याश्रयोऽयं मनोमात्रस्य गोचरः'—कारिकावली ५५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org